IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 4, Series 10 (April, 2019) 89-95
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

प्राचीन भारत की जटिल सामाजिक प्रक्रिया

भगवाना राम बिश्नोई

सह आचार्य हिन्दी राजकीय महाविद्यालय सिरोही राजस्थान

लगभग 600 ई-पू- से 600 ईसवी तक के मध्य आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। इनमें से कुछ परिवर्तनों ने समकालीन समाज पर अपना प्रभाव छोड़ा। उदाहरणत: वन क्षेत्रों में कृषि का विस्तार हुआ जिससे वहा रहने वाले लोगों की जीवनशैली में परिवर्तन हुआ शिल्प विशेषज्ञों के एक विशिष्ट सामाजिक समूह का उदय हुआ तथा संपत्ति के असमान वितरण ने सामाजिक विषमताओं को अधिक प्रखर बनाया। इतिहासकार इन सब प्रक्रियाओं को समझने के लिए प्राय: साहित्यिक परंपराओं का उपयोग करते हैं। कुछ ग्रंथ सामाजिक व्यवहार के मानदंड तय करते थे। अन्य ग्रंथ समाज का चित्रण करते थे और कभी-कभी समाज में मौजूद विभिन्न रिवाजों पर अपनी टिप्पणी भी प्रस्तुत करते थे। अभिलेखों से हमें समाज के कुछ ऐतिहासिक अभिनायकों की झलक मिलती है। हम देखेंगे कि प्रत्येक ग्रंथ ;और अभिलेख किसी समुदाय विशेष के दृष्टिकोण से लिखा जाता था। अत: यह याद रखना जरूरी हो जाता है कि ये ग्रंथ किसने लिखे, क्या लिखा गया और किनके लिए इनकी रचना हुई। इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि इन ग्रंथों की रचना में किस भाषा का प्रयोग हुआ तथा इनका प्रचार-प्रसार किस तरह हुआ। यदि हम इन ग्रंथों का प्रयोग सावधानी से करें तो समाज में प्रचलित आचार-व्यवहार और रिवाजों का इतिहास लिखा जा सकता है।

1 महाभारत का समालोचनात्मक सस्कंरण

1919 में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान वी-एस- सुकथांकर के नेतृत्व में एक अत्यंत महत्वाकांक्षी परियोजना की शुरुआत हुई। अनेक विद्वानों ने मिलकर महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण तैयार करने का जिम्मा उठाया। इससे जुड़े क्या-क्या कार्य थे? आरंभ में देश के विभिन्न भागों से विभिन्न लिपियों में लिखी गई महाभारत की संस्कृत पांडुलिपियों को एकत्रित किया गया। परियोजना पर काम करने वाले विद्वानों ने सभी पांडुलिपियों में पाए जाने वाले श्लोकों की तुलना करने का एक तरीका ढूढ निकाला। अंतत: उन्होंने उन श्लोकों का चयन किया जो लगभग सभी पांडुलिपियों में पाए गए थे और उनका प्रकाशन 13000 पृष्ठों में फैले अनेक ग्रंथ खंडों में किया। इस परियोजना को पूरा करने में सैंतालीस वर्ष लगे। इस पूरी प्रक्रिया में दो बातें विशेष रूप से उभर कर आइ : पहली, संस्कृत के कई पाठों के अनेक अंशों में समानता थी। यह इस बात से ही स्पष्ट होता है कि समूचे उपमहाद्वीप में उत्तिर में कश्मीर और नेपाल से लेकर दक्षिण में केरल और तमिलनाडु तक सभी पांडुलिपियों में यह समानता देखने में आई। दूसरी बात जो स्पष्ट हुई, वह यह थी कि कुछ शताब्दियों के दौरान हुए महाभारत के प्रेषण में अनेक क्षेत्रीय प्रभेद भी उभर कर सामने आए।

इन प्रभेदों का संकलन मुख्य पाठ की पादटिप्पणियों और परिशिष्टों के रूप में किया गया। 13000 पृष्ठों में से आधे से भी अधिक इन प्रभेदों का ब्योरा देते हैं। एक तरह से देखा जाए तो ये प्रभेद उन गूढ प्रक्रियाओं के द्योतक हैं जिन्होंने प्रभावशाली परंपराओं और लचीले स्थानीय विचार और आचरण के बीच संवाद कायम करके सामाजिक इतिहासों को रूप दिया था। यह संवाद द्वंद्व और मतैक्य दोनों को ही चित्रित करते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं के बारे में हमारी समझ मुख्यत: उन ग्रंथों पर आधारित है जो संस्कृत में ब्राह्मणों द्वारा उन्हीं के लिए लिखे गए। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में इतिहासकारों ने पहली बार सामाजिक इतिहास के मुद्दों का अनुशीलन करते समय इन ग्रंथों को सतही तौर पर समझा। उनका विश्वास था कि इन ग्रंथों में जो कुछ भी लिखा गया है वास्तव में उसी तरह से उसे व्यवहार में लाया जाता होगा। कालांतर में विद्वानों ने पालि, प्राकृत और तमिल ग्रंथों के माध्यम से अन्य परंपराओं का अध्ययन किया। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि आदर्शमूलक संस्कृत ग्रंथ आमतौर से आधकारिक माने जाते थे, किन्तु इन आदशो को प्रश्नवाचक दृष्टि से भी देखा जाता था और यदा-कदा इनकी अवहेलना भी की

जाती थी। जब हम इतिहासकारों द्वारा सामाजिक इतिहासों के पुनर्निर्माण की व्याख्या करते हैं तब हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा।

2 अनेक नियम और व्यवहार की विभिन्नता

21 परिवारों के बारे में जानकारी

हम बहुधा पारिवारिक जीवन को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु आपने देखा होगा कि सभी परिवार एक जैसे नहीं होते : पारिवारिक जनों की गिनती, एक दूसरे से उनका रिश्ता और उनके क्रियाकलापों में भी भिन्नता होती है। कई बार एक ही परिवार के लोग भोजन और अन्य संसाधनों का आपस में मिल-बाटकर इस्तेमाल करते हैं, एक साथ रहते और काम करते हैं और अनुष्ठानों को साथ ही संपादित करते हैं। परिवार एक बड़े समूह का हिस्सा होते हैं जिन्हें हम संबंधी कहते हैं। तकनीकी भाषा का इस्तेमाल करें तो हम संबंधयों को जाति समूह कह सकते हैं। पारिवारिक रिश्ते 'नैसर्ग्गिक' और रक्त संब, माने जाते हैं किन्तु इन संबंधों की परिभाषा अलग-अलग तरीके से की जाती है।

कुछ समाजों में भाई-बहन ;चचेरे, मौसेरे आदि से खून का रिश्ता माना जाता है किन्तु अन्य समाज ऐसा नहीं मानते। आरंभिक समाजों के संदर्भ में इतिहासकारों को विशिष्ट परिवारों के बारे में जानकारी आसानी से मिल जाती है किन्तु सामान्य लोगों के पारिवारिक संबंधों को पुनर्निर्ग्मित करना मुश्किल हो जाता है। इतिहासकार परिवार और बंधुता संबंधी विचारों का भी विश्लेषण करते हैं। इनका अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे लोगों की सोच का पता चलता है। संभवत: इन विचारों ने लोगों के क्रियाकलापों को प्रभावित किया होगा। इसी तरह व्यवहार ने विचारों पर भी असर डाला होगा।

22 पितृवंशिक व्यवस्था के आदर्श

क्या हम उन िबदुओं को निर्दिष्ट कर सकते हैं जब बंधुता के रिश्तों में परिवर्तन आया? एक स्तर पर महाभारत इसी की कहानी है। यह बांधवों के दो दलों कौरव और पांडव के बीच भूमि और सत्ता को लेकर हुए संघर्ष का चित्रण करती है। दोनों ही दल कुरु वंश से संबंधत थे जिनका एक जनपद पर शासन था। यह संघर्ष एक युद्ध में परिणत हुआ जिसमें पांडव विजयी हुए। इनके उपरांत पितृवंशिक उत्तराधिकार को उद्घोषित किया गया। हालाकि पितृवंशिकता महाकाव्य की रचना से पहले भी मौजूद थी, महाभारत की मुख्य कथावस्तु ने इस आदर्श को और सुदृढ़ किया। पितृवंशिकता में पुत्र पिता की मृत्यु के बाद उनके संसाधनों पर ;राजाओं के संदर्भ में सिहासन पर भी अधिकार जमा सकते थे। अधिकतर राजवंश ;लगभग छठी शताब्दी ई-पू- से पितृवंशिकता प्रणाली का अनुसरण करते थे। हालाकि इस प्रथा में विभिन्नता थी : कभी पुत्र के न होने पर एक भाई दूसरे का उत्तराधिकारी हो जाता था तो कभी बंधु-बांधव सिहासन पर अपना अधिकार जमाते थे। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्रिया जैसे प्रभावती गुप्त सत्ता का उपभोग करती थीं। पितृवंशिकता के प्रति झुकाव शासक परिवारों के लिए कोई अनूठी बात नहीं थी। ऋग्वेद जैसे कर्मकांडीय ग्रंथ के मंत्रों से भी यह बात स्पष्ट होती है। यह संभव है कि धनी वर्ग के पुरुष और ब्राह्मण भी ऐसा ही दृष्टिकोण रखते थे।

23 विवाह के नियम

जहा पितृवंश को आगे बढ़ाने के लिए पुत्र महत्वपूर्ण थे वहा इस व्यवस्था में पुत्रियों को अलग तरह से देखा जाता था। पैतृक संसाधनों पर उनका कोई अधिकार नहीं था। अपने गोत्र से बाहर उनका विवाह कर देना ही अपेक्षित था। इस प्रथा को बहिर्विवाह पद्धति कहते हैं और इसका तात्पर्य यह था कि ऊंची प्रतिष्ठा वाले परिवारों की कम उम्र की कन्याओं और स्त्रियों का जीवन बहुत सावधानी से नियमित किया जाता था जिससे 'उचित' समय और 'उचित' व्यक्ति से उनका विवाह किया जा सके। इसका प्रभाव यह हुआ कि कन्यादान अर्थात् विवाह में कन्या की भेंट को पिता का महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य माना गया। नए नगरों के उद्भव से सामाजिक जीवन अधिक जटिल हुआ। यहा पर निकट और दूर से आकर लोग मिलते थे और वस्तुओं की खरीद-फ़रोख्त के साथ ही इस नगरीय परिवेश में विचारों का भी आदान-प्रदान होता था। संभवत: इस वजह से आरंभिक विश्वासों और व्यवहारों पर प्रश्नचिन्ह लगाए गए। इस चुनौती के जवाब में ब्राह्मणों ने समाज के लिए विस्तृत आचार संहिताए तैयार कीं।

ब्राह्मणों को इन आचार संहिताओं का विशेष पालन करना होता था किन्तु बाकी समाज को भी इसका अनुसरण करना पड़ता था। लगभग 500 ई-पू- से इन मानदंडों का संकलन धर्मसूत्र व धर्मशास्त्र नामक संस्कृत ग्रंथों में किया गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण मनुस्मृति थी जिसका संकलन लगभग 200 ई-पू- से 200 ईसवी के बीच हुआ। हालाकि इन ग्रंथों के ब्राह्मण लेखकों का यह मानना था कि उनका दृष्टिकोण सार्वभौमिक है और उनके बनाए नियमों का सबके द्वारा पालन होना चाहिए, किन्तु वास्तविक सामाजिक संबंध कहीं अधिक जटिल थे। इस बात को भी ध्यान में रखना जरूरी है कि उपमहाद्वीप में फैली क्षेत्रीय विभिन्नता और संचार की बाधाओं की वजह से भी ब्राह्मणों का प्रभाव सार्वभौमिक कदापि नहीं था। दिलचस्प बात यह है कि धर्मसूत्र और धर्मशास्त्र विवाह के आठ प्रकारों को अपनी स्वीकृति देते हैं। इनमें से पहले चार 'उत्तम' माने जाते थे और बाकियों को निदित माना गया। संभव है कि ये विवाह पद्धतिया उन लोगों में प्रचलित थीं जो ब्राह्मणीय नियमों को अस्वीकार करते थे।

24 स्त्री का गोत्र

एक ब्राह्मणीय पद्धति जो लगभग 1000 ई-पू- के बाद से प्रचलन में आई, वह लोगों ;खासतौर से ब्राह्मणों को गोत्रों में वर्गीकृत करने की थी। प्रत्येक गोत्र एक वैदिक ऋषि के नाम पर होता था। उस गोत्र के सदस्य ऋषि के वंशज माने जाते थे। गोत्रों के दो नियम महत्वपूर्ण थे : विवाह के पश्चात स्त्रियों को पिता के स्थान पर पति के गोत्र का माना जाता था तथा एक ही गोत्र के सदस्य आपस में विवाह संबंध नहीं रख सकते थे। क्या इन नियमों का सामान्यत: अनुसरण होता था, इस बात को जानने के लिए हमें स्त्री और पुरुष नामों का विश्लेषण करना पड़ेगा जो कभी-कभी गोत्रों के नाम से उ,द्धृत होते थे। हमें कुछ नाम सातवाहनों जैसे प्रबल शासकों के वंश से मिलते हैं। इन राजाओं का पश्चिमी भारत और दक्कन के कुछ भागों पर शासन था ;लगभग दूसरी शताब्दी ई-पू से दूसरी शताब्दी ईसवी तक। सातवाहनों के कई अभिलेख प्रापत हुए हैं जिनके आधार पर इतिहासकारों ने पारिवारिक और वैवाहिक रिश्तों का खाका तैयार किया है। कुछ सातवाहन राजा बहुपत्नी प्रथा ;अर्थात् एक से अधिक पत्नी को मानने वाले थे। सातवाहन राजाओं से विवाह करने वाली रानियों के नामों का विश्लेषण इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि उनके नाम गौतम तथा वसिष्ठ गोत्रों से उद्भूत थे जो उनके पिता के गोत्र थे। इससे प्रतीत होता है कि विवाह के बाद भी अपने पति कुल के गोत्र को ग्रहण करने की अपेक्षा, जैसा ब्राह्मणीय व्यवस्था में अपेक्षित था, उन्होंने पिता का गोत्र नाम ही कायम रखा।

यह भी पता चलता है कि कुछ रानिया एक ही गोत्र से थीं। यह तथ्य बहिर्विवाह पद्धति के नियमों के विरुद्ध था। वस्तुत: यह उदाहरण एक वैकल्पिक प्रथा अंतर्विवाह पद्धति अर्थात् बंधुओं में विवाह संबंध को दर्शाता है जिसका प्रचलन दक्षिण भारत के कई समुदायों में अभी भी है। बांधवों ;ममेर, चचेरे इत्यादि भाई-बहन के साथ जोड़े गए विवाह संबंधों की वजह से एक सुगठित समुदाय उभर पाता था। संभवत: उपमहाद्वीप के और भागों में अन्य विविधताए भी मौजूद थीं किन्तु उनके विशिष्ट ब्योरों को पुननिर्मित करना संभव नहीं हो पाया है।

25 क्या माताए महत्वपूर्ण थीं?

हमने पढ़ा कि सातवाहन राजाओं को उनके मातृनाम ;माता के नाम से उद्भूत से चित्रित किया जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि माताए महत्वपूर्ण थीं किन्तु किसी भी निष्कर्ष पर पहुचने से पहले हमें बहुत सावधानी बरतनी होगी। सातवाहन राजाओं के संदर्भ में हमें यह ज्ञात है कि सिहासन का उत्तराधिकार पितृवंशिक होता था।

3 सामाजिक विषमताए

वर्ण व्यवस्था के दायरे में और उससे परे संभवत: आप 'जाति' शब्द से परिचित होंगे जो एक सोपानात्मक सामाजिक वर्गीकरण को दर्शाता है। धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों में एक आदर्श व्यवस्था का उल्लेख किया गया था। ब्राह्मणों का यह मानना था कि यह व्यवस्था जिसमें स्वयं उन्हें पहला दर्जा प्राप्त है, एक दैवीय व्यवस्था है। शूद्रों और 'अस्पृश्यों' को सबसे निचले स्तर पर रखा जाता था। इस व्यवस्था में दर्जा संभवत: जन्म के अनुसार निधार्रित माना जाता था।

31 'उचित' जीविका

धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों में चारों वगो के लिए आदर्श 'जीविका' से जुड़े कई नियम मिलते हैं। ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन, वेदों की शिक्षा, यज्ञ करना और करवाना था तथा उनका काम दान देना और लेना था। क्षत्रियों का कर्म यद्ध करना, लोगों को सुरक्षा प्रदान करना, न्याय करना, वेद पढ़ना, यज्ञ करवाना और दान-दक्षिणा देना था। अंतिम तीन कार्य वैश्यों के लिए भी थे साथ ही उनसे कृषि, गौ-पालन और व्यापार का कर्म भी अपेक्षित था। शूद्रों के लिए मात्र एक ही जीविका थी तीनों 'उच्च' वर्णों की सेवा करना। इन नियमों का पालन करवाने के लिए ब्राह्मणों ने दो-तीन नीतिया अपनाइ। एक, जैसा कि हमने अभी पढ़ा, यह बताया गया कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति एक दैवीय व्यवस्था है। दूसरा, वे शासकों को यह उपदेश देते थे कि वे इस व्यवस्था के नियमों का अपने राज्यों में अनुसरण करें। तीसरे, उन्होंने लोगों को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि उनकी प्रतिष्ठा जन्म पर आधारित है। किन्तु ऐसा करना आसान बात नहीं थी। अत: इन मानदंडों को बहुधा महाभारत जैसे अनेक ग्रंथों में वणित कहानियों के द्वारा बल प्रदान किया जाता था।

32 अक्षत्रिय राजा

शास्त्रों के अनुसार केवल क्षत्रिय राजा हो सकते थे। किन्तु अनेक महत्वपूर्ण राजवंशों की उत्पत्ति अन्य वर्णों से भी हुई थी। मौर्य वंश जिसने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया, के उद्भव पर गर्मजोशी से बहस होती रही है। बाद के बौद्ध ग्रंथों में यह इंगित किया गया है कि वे क्षत्रिय थे किन्तु ब्राह्मणीय शास्त्र उन्हें 'निम्न' कुल का मानते हैं। शुंग और कण्व जो मौयो के उत्तराधिकारी थे, ब्राह्मण थे। वस्तुत: राजनीतिक सत्ता का उपभोग हर वह व्यक्ति कर सकता था जो समर्थन और संसाधन जुटा सके। राजत्व क्षत्रिय कुल में जन्म लेने पर शायद ही निर्भर करता था। अन्य शासकों को, जैसे शक जो मध्य एशिया से भारत आए, ब्राह्मण उन्हें मलेच्छ, बर्बर अथवा अन्यदेशीय मानते थे। किन्तु संस्कृत के संभवत: आरंभिक अभिलेखों में से एक में प्रसिद्ध शक राजा रुद्रदामन ;लगभग दूसरी शताब्दी ईसवीद द्वारा सुदर्शन सरोवर के जीर्णोद्धार का वर्णन मिलता है।

इससे यह ज्ञात होता है कि शक्तिशाली मलेच्छ संस्कृतीय परिपाटी से अवगत थे। एक और दिलचस्प बात यह है कि सातवाहन कुल के सबसे प्रसिद्ध शासक गोतमी-पुत्त सिरी-सातकनि ने स्वयं को अनूठा ब्राह्मण और साथ ही क्षत्रियों के दर्प का हनन करने वाला बताया था। उसने यह भी दावा किया कि चार वर्णों के बीच विवाह संबंध होने पर उसने रोक लगाई। किन्तु फ़िर भी रुद्रदामन के परिवार से उसने विवाह संबंध स्थापित किए। जैसा आप इस उदाहरण में देख सकते हैं, जाति प्रथा के भीतर आत्मसात होना बहुधा एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया थी। सातवाहन स्वयं को ब्राहमण वर्ण का बताते थे जबकि ब्राह्मणीय शास्त्र के अनुसार राजा को क्षत्रिय होना चाहिए। वे चतुर्वर्णी व्यवस्था की मर्यादा बनाए रखने का दावा करते थे किन्तु साथ ही उन लोगों से वैवाहिक संबंध भी स्थापित करते थे जो इस वर्ण व्यवस्था से ही बाहर थे और जैसा हमने देखा वह अंतर्विवाह पद्धति का पालन करते थे न कि बहिर्विवाह प्रणाली का जो ब्राह्मणीय ग्रंथों में प्रस्तावित है।

33 जाति और सामाजिक गतिशीलता

ये जटिलताए समाज के वर्गीकरण के लिए शास्त्रों में प्रयुक्त एक और शब्द जाति से भी स्पष्ट होती हैं। ब्राह्मणीय सिद्धांत में वर्ण की तरह जाति भी जन्म पर आधारित थी। किन्तु वर्ण जहा मात्र चार थे वहीं जातियों की कोई निश्चित संख्या नहीं थी। वस्तुत: जहा कहीं भी ब्राह्मणीय व्यवस्था का नए समुदायों से आमना-सामना हुआ – उदाहरणत: जंगल में रहने वाले निषाद या कि व्यावसायिक वर्ग जैसे सुवर्णकार, जिन्हें चार वर्णों वाली व्यवस्था में समाहित करना संभव नहीं था, उनका जाति में वर्गीकरण कर दिया गया। वे जातिया जो एक ही जीविका अथवा व्यवसाय से जुड़ी थीं उन्हें कभी-कभी श्रेणियों में भी संगठित किया जाता था। हालाकि इन समुदायों के इतिहास का लेखा-जोखा हमें कम ही प्राप्त होता है, किन्तु कुछ अपवाद हैं जैसे कि मंदसौर ;मध्य प्रदेश से मिला अभिलेख ;लगभग पाचवीं शताब्दी ईसवी। इसमें रेशम के बुनकरों की एक श्रेणी का वर्णन मिलता है जो मूलत: लाट ;गुजरात प्रदेश के निवासी थे और वहा से मंदसौर चले गए थे, जिसे उस समय दशपुर के नाम से जाना जाता था। यह कठिन यात्रा उन्होंने अपने बच्चों और बांधवो के साथ संपन्न की। उन्होंने वहा के राजा की महानता के बारे में सुना था अत: वे उसके राज्य में बसना चाहते थे। यह अभिलेख जटिल सामाजिक प्रक्रियाओं की झलक देता है तथा श्रेणियों के स्वरूप के विषय में अंतर्दृष्टि

प्रदान करता है। हालाकि श्रेणी की सदस्यता शिल्प में विशेषज्ञता पर निर्भर थी। कुछ सदस्य अन्य जीविका भी अपना लेते थे। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि सदस्य एक व्यवसाय के अतिरिक्त और चीजों में भी सहभागी होते थे। सामूहिक रूप से उन्होंने शिल्पकर्म से अर्जित धन को सूर्य देवता के सम्मान में मंदिर बनवाने पर खर्च किया।

34 चार वर्णों के परे : एकीकरण

उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली विविधताओं की वजह से यहा हमेशा से ऐसे समुदाय रहे हैं जिन पर ब्राह्मणीय विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। संस्कृत साहित्य में जब ऐसे समुदायों का उल्लेख आता है तो उन्हें कई बार विचित्र, असभ्य और शुवत चित्रित किया जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण वन प्रांतर में बसने वाले लोगों के हैं जिनके लिए शिकार और कंद-मूल संग्रह करना जीवन-निर्वाह का महत्वपूर्ण साधन था। निषाद वर्ग जिससे एकलव्य जुड़ा माना जाता था, इसी का उदाहरण है। यायावर पशुपालकों के समुदाय को भी शंका की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि उन्हें आसानी से बसे हुए कृषि कर्मियों के साचे के अनुरूप नहीं ढाला जा सकता था। यदा-कदा उन लोगों को जो असंस्कृत भाषी थे, उन्हें मलेच्छ कहकर हेय दृष्टि से देखा जाता था। किन्तु इन लोगों के बीच विचारों और मतों का आदान-प्रदान होता था। उनके संबंधों के स्वरूप के बारे में हमें महाभारत की कथाओं से ज्ञात होता है।

35 चार वर्णों के परे : अधीनता और संघर्ष

ब्राह्मण कुछ लोगों को वर्ण व्यवस्था वाली सामाजिक प्रणाली के बाहर मानते थे। साथ ही उन्होंने समाज के कुछ वगो को 'अस्पृश्य' घोषित कर सामाजिक वैषम्य को और अधिक प्रखर बनाया। ब्राह्मणों का यह मानना था कि कुछ कर्म, खासतौर से वे जो अनुष्ठानों के संपादन से जुड़े थे, पुनीत और 'पवित्र' थे, अत: अपने को पवित्र मानने वाले लोग अस्पृश्यों उपमहाद्वीप के सबसे समृद्ध ग्रंथों में से एक महाभारत का विश्लेषण करते हुए हम अपना ध्यान एक ऐसे विशाल महाकाव्य पर केंद्रित कर रहे हैं जो अपने वर्तमान रूप में एक लाख श्लोकों से अधिक है और विभिन्न सामाजिक श्रेणियों व परिस्थितियों का लेखा-जोखा है। इस ग्रंथ की रचना एक हजार वर्ष तक होती रही ;लगभग 500 ई-पू- से। इसमें निहित कुछ कथाए तो इस काल से पहले भी प्रचलित थीं। महाभारत की मुख्य कथा दो परिवारों के बीच हुए यद्ध का चित्रण है। इस ग्रंथ के कुछ भाग विभिन्न सामाजिक समुदायों के आचार-व्यवहार के मानदंड तय करते हैं।

यदा-कदा ;किन्तु हमेशा नहीं इस ग्रंथ के मुख्य पात्र इन सामाजिक मानदंडों का अनुसरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। मानदंडों का अनुसरण व उनकी अवहेलना क्या इंगित करती है? भोजन नहीं स्वीकार करते थे। पवित्रता के इस पहलू के ठीक विपरीत कुछ कार्य ऐसे थे जिन्हें खासतौर से 'दूषित' माना जाता था। शवों की अंत्येष्टि और मृत पशुओं को छूने वालों को चांडाल कहा जाता था। उन्हें वर्ण व्यवस्था वाले समाज में सबसे निम्न कोटि में रखा जाता था। वे लोग जो स्वयं को सामाजिक क्रम में सबसे ऊ□पर मानते थे, इन चांडालों का स्पर्श, यहा तक कि उन्हें देखना भी, अपवित्रकारी मानते थे। मनुस्मृति में चाडालों के 'कर्तव्यों' की सूची मिलती है। उन्हें गाव के बाहर रहना होता था। वे फेके हुए बर्तनों का इस्तेमाल करते थे, मरे हुए लोगों के वस्त्र तथा लोहे के आभूषण पहनते थे। रात्रि में वे गांव और नगरों में चल-फ़िर नहीं सकते थे। संबंधियों से विहीन मृतकों की उन्हें अंत्येष्टि करनी पड़ती थी तथा वधक के रूप में भी कार्य करना होता था। चीन से आए बौद्ध भिक्षु फाह-शिएन ;लगभग पाचवीं शताब्दी ईसवी, का कहना है कि अस्पृश्यों को सड़क पर चलते हुए करताल बजाकर अपने होने की सूचना देनी पड़ती थी जिससे अन्य जन उन्हें देखने के दोष से बच जाए। एक और चीनी तीर्थयात्री श्वैन-त्सांग ;लगभग सातवीं शताब्दी ईसवी कहता है कि वधक और सफ़ाई करने वालों को नगर से बाहर रहना पड़ता था। अब्राह्मणीय ग्रंथों में चित्रित चांडालों के जीवन का विश्लेषण करके इतिहासकारों ने यह जानने का प्रयास किया है कि क्या चांडालों ने शास्त्रों में निधार्रित अपने हीन जीवन को स्वीकार कर लिया था? यदा-कदा इन ग्रंथों के चित्रण और ब्राह्मणीय ग्रंथ में हुए चित्रण में समानता है परंतु कभी-कभी हमें एक भिन्न सामाजिक वास्तविकता का भी संकेत मिलता है।

4 जन्म के परे : संसाधन और प्रतिष्ठा

यदि आप आर्थिक संबंधों पर विचार करें तो देखेंगे कि दास, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, शिकारी, मछुआरे, पशुपालक, किसान,ग्राममुखिया, शिल्पकार, वणिक और राजा सभी का उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में सामाजिक अभिनायक के रूप में उद्भव हुआ। उनके सामाजिक स्थान इस बात पर निर्भर करते थे कि आर्थिक संसाधनों पर उनका कितना नियंत्रण है। अब हम विशेष संदभो में इस बात का परीक्षण करेंगे कि संसाधनों पर नियंत्रण के क्या सामाजिक आशय थे।

41 संपत्ति पर स्त्री और पुरुष के भिन्न अधिकार

अब हम महाभारत के एक महत्वपूर्ण प्रकरण पर विचार करेंगे। कौरव और पांडव के बीच लंबे समय से चली आ रही प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप दुर्योधन ने युधष्ठिर को द्यूत क्रीड़ा के लिए आमंत्रित किया। युधष्ठिर अपने प्रतिद्वंद्वी द्वारा धोखा दिए जाने के कारण इस द्यूत में स्वर्ण, हस्ति, रथ, दास, सेना, कोष, राज्य तथा अपनी प्रजा की संपत्ति, अनुजों और फ़िर स्वयं को भी दाव पर लगा कर गवा बैठे। इसके उपरांत उन्होंने पांडवों की सहपत्नी द्रौपदी को भी दाव पर लगाया और उसे भी हार गए। संपत्ति के स्वामित्व के मुद्दे जो इन कहानियों में वर्णित हैं, धर्मसूत्र और धर्मशास्त्रों में भी उठाए गए हैं।

मनुस्मृति के अनुसार पैतृक जायदाद का माता-पिता की मृत्यु के बाद सभी पुत्रों में समान रूप से बंटवारा किया जाना चाहिए किन्तु ज्येष्ठ पुत्र विशेष भाग का अधिकारी था। स्त्रिया इस पैतृक संसाधन में हिस्सेदारी की माग नहीं कर सकती थीं। किन्तु विवाह के समय मिले उपहारों पर स्त्रियों का स्वामित्व माना जाता था और इसे स्त्रीधन ;अर्थात् स्त्री का धनद्ध की संज्ञा दी जाती थी। इस संपत्ति को उनकी संतान विरासत के रूप में प्राप्त कर सकती थी और इस पर उनके पति का कोई अधिकार नहीं होता था। किन्तु मनुस्मृति स्त्रियों को पति की आज्ञा के विरुद्ध पारिवारिक संपत्ति अथवा स्वयं अपने बहुमूल्य धन के गुप्त संचय के विरुद्ध भी चेतावनी देती है। आपने एक धनाढ्य वाकाटक महिषी प्रभावती गुप्त के बारे में पढ़ा ही है। किन्तु अधिकतर अभिलेखीय व साहित्यिक साक्ष्य इस बात की ओर इशारा करते हैं कि यद्यपि उच्च वर्ग की महिलाए संसाधनों पर अपनी पैठ रखती थीं, सामान्यत: भूमि, पशु और धन पर पुरुषों का ही नियंत्रण था। दूसरे शब्दों में, स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक हैसियत की भिन्नता संसाधनों पर उनके नियंत्रण की भिन्नता की वजह से अधिक प्रखर हुई।

42 वर्ण और संपत्ति के अधिकार

ब्राह्मणीय ग्रंथों के अनुसार संपत्ति पर अधिकार का एक और आधार ;लैंगिक आधार के अतिरिक्तद्ध वर्ण था। जैसा हम जानते है कि शूद्रों के लिए एकमात्र 'जीविका' ऐसी सेवा थी जिसमें हमेशा उनकी इच्छा शामिल नहीं होती थी। हालाकि तीन उच्च वर्णों के पुरुषों के लिए विभिन्न जीविकाओं की संभावना रहती थी। यदि इन सब विधानों को वास्तव में कार्यान्वित किया जाता तो ब्राह्मण और क्षत्रिय सबसे धनी व्यक्ति होते। यह तथ्य कुछ हद तक सामाजिक वास्तविकता से मेल खाता था। साहित्यिक परंपरा में पुरोहितों और राजाओं का वर्णन मिलता है जिसमें राजा अधिकतर धनी चित्रित होते हैं पुरोहित भी सामान्यत: धनी दर्शाए जाते हैं। हालाकि यदा-कदा निर्धन ब्राह्मण का भी चित्रण मिलता है। एक और स्तर पर, जहा समाज के ब्राह्मणीय दृष्टिकोण को धर्मसूत्र और धर्मशास्त्र में संहिताबद्ध किया जा रहा था अन्य परंपराओं ने वर्ण व्यवस्था की आलोचना प्रस्तुत की। इनमे से सर्वविदित आलोचनाए प्रारंभिक बौद्ध धर्म में ;लगभग छठी शताब्दी ई-पू- से, विकसित हुई। बौद्धों ने इस बात को अंगीकार किया कि समाज में विषमता मौजूद थी किन्तु यह भेद न तो नैसर्गिक थे और न ही स्थायी बौद्धों ने जन्म के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा को अस्वीकार किया।

43 एक वैकल्पिक सामाजिक रूपरेखा : संपत्ति में भागीदारी

अभी तक हम उन परिस्थितियों का परीक्षण करते रहे हैं जहा लोग अपनी संपत्ति के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा का दावा करते थे, या पिफर उन्हें वह स्थिति प्रदान की जाती थी। किन्तु समाज में अन्य संभावनाए भी थीं। वह स्थिति जहा दानशील आदमी का सम्मान किया जाता था तथा कृपण व्यक्ति अथवा वह जो स्वयं अपने लिए संपत्ति संग्रह करता था, घृणा का पात्र होता था। प्राचीन तमिलकम् एक ऐसा ही क्षेत्र था जहा उपरोक्त आदशो को संजोया जाता था।

जैसा हम जानते है इस क्षेत्र में 2000 वर्ष पहले अनेक सरदारिया थीं। यह सरदार अपनी प्रशंसा गाने वाले चारण और कवियों के आश्रयदाता होते थे। तमिल भाषा के संगम साहित्यिक संग्रह में सामाजिक और आर्थिक संबंधों का अच्छा चित्रण है जो इस ओर इंगित करता है कि हालाकि धनी और निर्धन के बीच विषमताए थीं, जिन लोगों का संसाधनों पर नियंत्रण था उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे मिल-बाट कर उसका उपयोग करेंगे।

5 सामाजिक विषमताओं की व्याख्या : एक सामाजिक अनुबंध

बौद्धों ने समाज में फैली विषमताओं के संदर्भ में एक अलग अवधारणा प्रस्तुत की। साथ ही समाज में फैले अंतर्विरोधों को नियमित करने के लिए जिन संस्थानों की आवश्यकता थी, उस पर भी अपना दृष्टिकोण सामने रखा। सुत्तपिटक नामक ग्रंथ में एक मिथक वर्णित है जो यह बताता है कि प्रारंभ में मानव पूर्णतया विकसित नहीं थे। वनस्पति जगत भी अविकसित था। सभी जीव शांति के एक निर्बाध लोक में रहते थे और प्रकृति से उतना ही ग्रहण करते थे जितनी एक समय के भोजन की आवश्यकता होती है। किन्तु यह व्यवस्था क्रमश: पतनशील हुई।

मनुष्य अधिकाधक लालची, प्रतिहिंसक और कपटी हो गए। इस स्थिति में उन्होंने विचार किया कि: क्या हम एक ऐसे मनुष्य का चयन करें जो उचित बात पर क्रोधित हो, जिसकी प्रताड़ना की जानी चाहिए उसको प्रताड़ित करे और जिसे निष्कासित किया जाना हो उसे निष्कासित करे? बदले में हम उसे चावल का अंश देंगे— सब लोगों द्वारा चुने जाने के कारण उसे महासम्मत्त की उपाधि प्राप्त होगी। इससे यह ज्ञात होता है कि राजा का पद लोगों द्वारा चुने जाने पर निर्भर करता था। 'कर' वह मूल्य था जो लोग राजा की इस सेवा के बदले उसे देते थे। यह मिथक इस बात को भी दर्शाता है कि आर्थिक और सामाजिक संबंधों को बनाने में मानवीय कर्म का बड़ा हाथ था। इसके कुछ और आशय भी हैं। उदाहरणत: यदि मनुष्य स्वयं एक प्रणाली को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार थे तो भविष्य में उसमें परिवर्तन भी ला सकते थे।

संदर्भ सूचि

मेनन , इंदु , एम. (1989) । भारत में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति। केरल का एक केस स्टडी। नई दिल्ली: उप्पल पब्लिशिंग हाउस।

2. नंदा , बी.आर. (1976) । भारतीय महिलाएं पर्दे से लेकर आधुनिकता तक। नई दिल्ली: विकास प्रकाशन

3. मिश्रा , आर.सी. (2006) । लैंगिक समानता की ओर। ऑथरप्रेस. आईएसबीएन 81-7273-306-2 https://www.vedamsbooks.com/no43902.htm

4. पृथी , राज कुमार ; रामेश्वरी देवी और रोमिला प्रुथी (2001) । महिलाओं की स्थिति और स्थिति: प्राचीन , मध्यकालीन और आधुनिक भारत में। वेदम ग्रंथ। आईएसबीएन 81-7594-078-6 । https://www.vedamsbooks.com/no21831.htm

5. " वैदिक महिलाएं: प्यार करने वाली , सीखी हुई , भाग्यशाली!"। http://hinduism.about.com/library/weekly/aa031601c.htm । 2006-12-24 को पुनःप्राप्त.

6. " इन्फो चेंज वीमेन: बैकग्राउंड एंड पर्सपेक्टिव"। http://www.infochangeindia.org/WomenIbp.jsp । 2006-12-24 को पुनःप्राप्त.

7. " इतिहास में महिलाएं"। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय संसाधन केंद्र। http://nrcw.nic.in/index2.asp?sublinkid=450. 2006-12-24 को पुनःप्राप्त.

8. ज्योत्सना कामत (2006-1) । "मध्यकालीन कर्नाटक में महिलाओं की स्थिति"। http://www.kamat.com/jyotsna/women.htm । 2006-12-24 को पुनःप्राप्त.

9. सरवनकुमार , ए.आर. (2016) । भारत में महिला शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य। चोल साम्राज्य में शैक्षिक प्रथाओं पर आईसीएचआर द्वारा प्रायोजित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में (850 - 1279 ईस्वी) एपिक - 2016 इतिहास और डीडीई विभाग , अलगप्पा विश्वविद्यालय , कराईकुडी द्वारा आयोजित।

10. इतिहास में महिलाएं"। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय संसाधन केंद्र।